Peer Reviewed Referred and
UGC Listed Journal
(Journal No. 40776)

ISSN 2277 - 5730
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY
QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

AJANTA

Volume - XII, Issue - II
April - June - 2023
English / Marathi / Hindi Part - I

IMPACT FACTOR / INDEXING
2023 - 7.428
www.sjifactor.com

Ajanta Prakashan

ISSN 2277 - 5730

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY
QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

AJANTA

Volume - XII Issue - II April - June - 2023

ENGLISH / MARATHI / HINDI PART - I

Peer Reviewed Refereed and
UGC Listed Journal No. 40776

Single Blind Review / Double Blind Review

ज्ञान-विज्ञान विमुक्तये

IMPACT FACTOR / INDEXING
2023 - 7.428
www.sjifactor.com

❖ EDITOR ❖
Asst. Prof. Vinay Shankarrao Hatole
M.Sc (Maths), M.B.A. (Mktg.), M.B.A. (H.R.),
M.Drama (Acting), M.Drama (Prod. & Dir.), M.Ed.

❖ PUBLISHED BY ❖

Ajanta Prakashan
Chhatrapati Sambhaji Nagar (Aurangabad.)

VOLUME - XII, ISSUE - II - APRIL - JUNE - 2023
AJANTA - ISSN 2277 - 5730 - IMPACT FACTOR - 7.428 (www.sjifactor.com)

१. बुन्देलखण्ड के लोक साहित्य में धार्मिकता

प्रो. नागेश दुबे

विभागाध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्त्व विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

प्रत्येक अंचल की संस्कृति की अपनी पृथक विशेषताएँ होती हैं, उसका एक अलग जीवन दर्शन होता है, जीवन मूल्य होते हैं। जिनके कारण अंचल विशेष की संस्कृति अपना विशिष्ट महत्व रखती है। इसी प्रकार बुन्देली संस्कृति की अपनी कुछ मान्यतायें जीवनादर्श हैं। लोक चिन्तन हैं। दरअसल लोक चिन्तन ही. लोक जीवन के दर्शन और साहित्य में ढलता है। इसी तरह बुंदेली लोकजीवन का प्रतिबिम्ब उसका लोक साहित्य है। बुन्देली लोक साहित्य बहुत विस्तृत है।[1]

प्राचीन काल से ही बुन्देली भूमि ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं लोक कलाओं की दृष्टि से अपना अलग स्थान रखती आ रही है। बुन्देलखण्ड अंचल की सीमाएँ यमुना, नर्मदा, चंबल, तमसा, बेतवा, धसान जैसी पवित्र नदियों की धाराओं से घिरीं हैं। चौदहवीं शताब्दी ई. में बुन्देला वंश के आधिपत्य के फलस्वरूप इस भू–भाग का नाम बुन्देलखण्ड पड़ा। इसके पहले इसे चेदि, जिझौती, जैजाकभुक्ति जैसे नामों से भी जाना जाता रहा है।[2]

बुन्देलखण्ड में शौर्य गाथाओं की एक लम्बी परम्परा पाई जाती है। बारहवीं शताब्दी ई. से लेकर बीसवीं शताब्दी ई. के पूर्वार्द्ध तक लिखी गई शौर्य गाथाएँ आल्हा, रासो, कटक और राछरों के रूप में उपलब्ध हुईं हैं। बुन्देलखण्ड अंचल में लोकगाथायें विभिन्न रूपों में प्रचलित हैं। रासो, राछरे, आल्हा, पंवारे आदि लोकगाथाओं के ही रूप हैं।[3]

लोक जीवन में लोक गाथायें बड़े प्रेम और तन्मयता से गाई तथा सुनी जाती हैं। यह कथापरक गीत होते हैं। इनमें कहानी गीत के माध्यम से आगे बढ़ती है। इस प्रकार लोक गाथाओं को इतिवृत्तात्मक लोक काव्य कहा जा सकता है। इनका आकार सामान्य लोकगीतों से अधिक बड़ा होता है।[4]

लोक गाथाओं में प्रायः लोकनायकों का शौर्य, लोक जीवन में चर्चित प्रेम–गाथायें, देवी–देवताओं के कथापरक प्रसंग तथा पौराणिक आख्यान वर्णित होते हैं। जिन कथाओं में शौर्य वर्णित होता है वे प्रायः 'राछरे' या 'पंवारे' कहलाते हैं।[5] गोटें, राछरे तथा पंवारे बुन्देलखण्ड में गाये जाने वाले ऐसे ही लोकगीत हैं। इनमें जो गीत कथात्मक होते हैं, वे तकनीकी दृष्टि से लोकगाथा की श्रेणी में गिने जाते हैं।

देवी–देवताओं से संबंधित गाथायें 'गोट' के रूप में मिलती हैं। इनमें कारसदेव की गोटें तथा हीरामन की गोटें लोकप्रिय हैं। पौराणिक आख्यानों में मोरध्वज–कथा, भरथरी–कथा हरिश्चन्द्र, शंकर जी का विवाह तथा स्थानीय आख्यानों में हरदौल–कथा गाने तथा सुनने का प्रचलन अपेक्षाकृत अधिक है।[6] इन लोक गाथाओं का कोई प्रामाणिक मूल पाठ या आकार नहीं है। हर स्थान पर इनमें कुछ अन्तर मिलते हैं। यहाँ तक कि पद तथा वाक्य में भी बदलाव मिलता है। किन्तु इस परिवर्तन के बावजूद उनको लय, ध्वनि, गेयता, सुरक्षित रहती है। इनमें संगीतात्मकता का

प्राधान्य होता है तथा टेक की पंक्तियाँ प्रत्येक पद के पश्चात् दुहराते हैं। गायक तमूरा या इकतारा के साथ ये गाथायें गाते हैं। अनेक गाथाओं में गायन के साथ नृत्य की भी परम्परा मिलती है।[7]

'राछरे' में गाथा साहित्य के समस्त लक्षण दिखाई देते हैं। इनमें लोक साहित्य का स्वरूप परिलक्षित होता है। गाथा की भांति कोई एक महत्त्वपूर्ण कथा होती है जिसमें इतिहास और धार्मिकता का समावेश होता है। लोकगाथायें बुन्देलखण्ड के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास व साहित्य की आधारभूमि हैं।[8] यदि साहित्य की दृष्टि से इनका मूल्यांकन किया तो ये साहित्य की अमूल्यनिधि के रूप में सिद्ध हो सकते हैं। इनपर पर्याप्त साहित्य की रचना हो सकती है।[9]

बुन्देलखण्ड में प्रचलित समस्त लोकगाथाएँ सीधी–सादी बुन्देली लोक भाषा में गायीं जाती हैं। लोक भाषा में प्रचलित शब्दावली का प्रयोग किया जाता है। लोकगाथाओं को भाषा लोकभाषा ही होती है। लोकभाषा के माध्यम से व्यक्त किये गये भाव इतने सहज और स्वाभाविक होते हैं कि जन–जन के मन को आकर्षित कर लेते हैं।[10]

बुन्देलखण्ड की अधिकांश लोकगाथाएँ पद्यात्मक हैं। ये लोक ध्वनिमों में आबद्ध हैं। इनमें बुन्देलखण्ड का लोकसंगीत सुरक्षित है। राछरे प्रायः वर्षा ऋतु में गाये जाते हैं। इनमें 'मल्हार' राग का स्वर समाया रहता है। कुछ राछरे लोक संगीत और लोकवाद्यों के साथ एक विशिष्ट ध्वनि में गाये जाते हैं। ढोलक, नगड़िया और अन्य लोक वाद्यों के साथ लोग इन राछरों को गाते हैं।[11]

लोक साहित्य, लोक जीवन के लिए एक प्रमुख मनोरंजन का साधन है खेतों, खलिहानों में काम करते करते थके हुए लोग जब शाम को घर लौटते हैं तब भोजन के बाद ग्राम के सार्वजनिक चबूतरे पर एकत्रित होकर लोकगीतों, लोककथाओं और लोकगाथाओं को गा–गाकर मनोविनोद करते हैं। उस समय उनमें उत्साह और उमंग का संचार होता रहता है। यही स्थिति राछरों के गायन की भी होती है। पावस (वर्षा) ऋतु में जब घनघोर बादल गम्भीर स्वर में गर्जन करते हैं, रिमझिम रिमझिम फुहार पड़ने लगती हैं तथा पुरवाई शीतल वयार बहने लगती हैं। ऐसे आनन्ददायक वातावरण में लोकगीत गायकों के कंठों से राछरों के मधुर स्वर फूट पड़ते हैं। जिन्हें सुनकर सम्पूर्ण जन समुदाय हर्ष विभोर होकर झूमने लगता है।[12] लोकगाथायें अनपढ़ और अशिक्षित लोकगायकों की रचनायें हैं। किन्तु वे काव्य शिल्प से रहित नहीं हैं। बुन्देलखण्ड के राछरे रस, छन्द और अलंकारों की दृष्टि से परिपूर्ण हैं।[13]

लाला हरदौल, बुन्देलखण्ड के आदर्श पुरुष थे। सम्पूर्ण बुंदेलखण्ड में उन्हें देवतुल्य पूजता है। महिलाओं के गीतों में उनका वर्णन इस आश्वासन के साथ आता है कि 'जैसी लाला अबै निभाई, ऊसई सदा निबइयो।' श्रवण कुमार की पितृभक्ति, राजा मधुकरशाह की धार्मिक आस्था, रानी गणेश कुँवरि की दृढ़ता प्रवीणराय की बुद्धिमत्ता सम्पूर्ण मानव समाज के हेतु प्रेरणादायक है।[14]

राछरों में अनेक स्थलों पर 'धर्म' को स्थान दिया गया है। राछरों में ही वर्णित अधिकांश वीर आदिशक्ति के उपासक दिखाई देते हैं। उस समय धर्मयुद्ध हुआ करते थे। अधर्म के लिए कोई स्थान नहीं था। प्रवीणराय हालांकि वेश्या थी, फिर भी उसने अकबर बादशाह के दरबार में अपने धर्म का विधिवत पालन किया था। वह महाराजा इन्द्रजीत को सान्त्वना देती हुई कहती है–

चिन्ता नई करियौं मोये महाराजा,
जल्दी घरै लौट आय मोरे लाल।
अपनौ धरम हम पालें मोय राजा,
छुयै न कोऊ मोई छांय।

मधुकरशाह और रानी गणेश कुंवरि नाम के राछरे धर्म प्रधान हैं। मधुकरशाह एक धर्मपरायण राजा थे। बादशाह की आज्ञा का उल्लंघन करते हुए शाही दरबार में लम्बा रामानन्दी तिलक लगाकर गये। बादशाह, ने उनकी धार्मिक आस्था पर मुग्ध होकर उन्हें 'टिकैत' की उपाधि से विभूषित किया। उनकी निर्भीकता और धार्मिकता को देखकर बादशाह ने प्रशंसा करते हुए कहा था–

आपके ही नाम लगाया अब जायेगा।
मधुकर शाही अब तिलक कहलायेगा।

रानी गणेश कुंवरि राम भक्त थीं और राजा मधुकरशाह कृष्ण भक्त थे। अपने अपने आराध्यों को लेकर राजा और रानी में विवाद उत्पन्न हो गया। राजा ने कह दिया कि यदि आप सच्ची रामोपासिका हैं तो अपने राम को अयोध्यापुरी से ओरछा क्यों नहीं बुला लेतीं। रानी को राजा के ये व्यंग्य वचन हृदय में चुभ गये और वे मन ही मन प्रतिज्ञा कर ओरछा से अयोध्या नगरी को चल दीं। वहाँ जाकर राम की आराधना में लीन हो गई। उन्होंने सरयू नदी के किनारे बैठकर यह प्रतिज्ञा की कि यदि राम मुझे प्राप्त नहीं होगें तो मैं, सरयू में डूबकर अपनी आत्महत्या कर लूँगी। दृढ़ निश्चय कर प्राण विसर्जन के लिए ज्यों ही उन्होंने सरयू नदी के अगाध जल में डुबकी लगाई त्यों ही रामलला उनकी गोद में आ गये। भगवान तो भक्त वत्सल हैं। अपने भक्त की दृढ़ भक्ति को देखकर द्रवित हो गये। राछरेकार ने उनकी भक्ति भावना का वर्णन करते हुए कहा है–

राजा रामखों लेखैं गई गनेशबाई, धन्न पूरब की कमाई।
करकैं चली प्रतिज्ञा मनमें, धरके ध्यान प्रभू चरनन में।
जोलौं करों नईं भोजन मैं।
जोलौं मंजू मूरत श्री राम जू की नईं पांई।
धन्न पूरब की कमाई।[15]

राछरों में इस भावना के दर्शन अनेक स्थलों पर होते हैं जिन्हें सुन–सुनकर जन–जन के मन में इस भावना का संचार होने लगता है।

बुन्देलखण्ड में उत्पन्न होने वाले नर–नारियों ने जीवन की बाजी लगाकर मान–मर्यादा की रक्षा की। पुरुषों का त्याग और बलिदान तो स्वाभाविक ही है, किन्तु नारियां भी पीछे नहीं रहीं। इस धरती पर अवतरित होने वाली वीर–नारियों ने अपने त्याग और आत्म बलिदान का परिचय दिया था।

बुन्देली राछरों के अधिकांश पात्र और घटनाएँ इतिहास से सम्बन्धित होती हैं मौखिक–परम्परा होने के कारण कुछ मूल पात्र और घटनाऐं विलुप्त हो जाती हैं और कुछ नवीन पात्र और घटनाऐं उनमें जुड़ जातीं हैं। कुछ काल्पनिक और अनैतिहासिक घटनाओं का भी उनमें समावेश हो जाता है। जिसके कारण उनका वास्तविक स्वरूप तो प्रच्छन्न हो जाता है और कल्पित रूप उभर आता है जिसके कारण इतिहासविद एवं मनीषीगण उनकी

ऐतिहासिकता पर संदेह करने लगते हैं। यदि उनके हर पक्ष का विधिवत अध्ययन किया जाय तो उनमें से अनेक ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त हो सकते हैं।

प्रत्येक राछरा खण्डकाव्य–सा प्रभाव रखता है। जिस प्रकार रासो में एक युद्ध प्रमुख होता है, किसी विशेष उद्देश्य से वीरता की अभिव्यक्ति प्रधान होती है, ठीक उसी प्रकार राछरे में भी किसी एक घटना जो प्रायः युद्ध से संबंधित होती है, का वर्णन रहता है। इस तरह एक राछरा, एक रासो प्रबंध ही होता है। उसमें थोड़े में सबकुछ है, जो उसकी व्यंजना शैली की विशेषता है इसलिए राछरे से वीरगाथाओं, फिर रासोकाव्यों का अविर्भाव हुआ है। हिन्दी के ऐतिहासिक काव्य के बीज और जड़ राछरे हैं, राष्ट्रीय काव्यधारा का उद्‌गम राछरों से ही हुआ है। अगर राछरे न होते, तो आल्हा जैसा लोक महाकाव्य न बनता।

बुन्देलखण्ड में प्रचलित लोकगाथाएँ विशेषरूप से राछरों का बुन्देलखण्ड की संस्कृति में अमूल्य योगदान है। ये राछरे बुन्देलखण्ड के लोकजीवन में लोकप्रिय हैं। ये बुन्देलखण्ड के धार्मिक एवं सांस्कृतिक इतिहास की अमूल्य धरोहर हैं। बुन्देली लोकगाथाओं में धार्मिकता का विशिष्ट गुण समाविष्ट है।[16]

सन्दर्भ

1. श्रीवास्तव, अतुल कुमार, बुन्देली में गाथात्मक गीत, ईसुरी, अंक–16, डॉ. हरीसिंहगौर विश्वविद्यालय, सागर, 2008–2009, पृ.115
2. वही
3. गुप्त, अयोध्या प्रसाद, बुन्देलखण्ड का लोक जीवन, नमन प्रकाशन, उरई, 1997, पृ.33
4. श्रीवास्तव, श्याम बिहारी, बुन्देलखण्ड की शौर्य गाथाएँ, बुन्देली इतिहास और संस्कृति, आदिवासी लोककला अकादमी, भोपाल, 2005, पृ.292
5. दीक्षित, दुर्गा प्रसाद, गाथा साहित्य की परम्परा में बुन्देली लोक–साहित्य का अनुशीलन, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा, 1994, पृ.136
6. गुप्त, अयोध्या प्रसाद, पूर्वोल्लिखित, पृ.40
7. दुबे, आरती, 'बुन्देली राछरे', ईसुरी, अंक–18, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, 2010–11, पृ.12
8. गुप्त, अयोध्या प्रसाद, पूर्वोल्लिखित, पृ.
9. द्विवेदी, कैलाश बिहारी, बुन्देली गाथाएँ : रूढ़ियाँ और उद्देश्य, बुन्देली इतिहास और संस्कृति, आदिवासी लोककला अकादमी, भोपाल, 2005, पृ.263
10. दीक्षित, दुर्गा प्रसाद, पूर्वोल्लिखित, पृ.214
11. दुबे, आरती, पूर्वोल्लिखित, पृ.125
12. दुबे, आरती, पूर्वोल्लिखित, पृ.221
13. दीक्षित, दुर्गा प्रसाद, पूर्वोल्लिखित, पृ.225
14. वही, पृ.226
15. दुबे, आरती, पूर्वोल्लिखित, पृ.221
16. श्रीवास्तव, बी.के., बुन्देलखण्ड की संस्कृति, नई दिल्ली, 2019, पृ. iv, (भूमिका)